पी. सी. जैन, माननीय कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति और माननीय न्यायमूर्ति के.एस. तिवाना

के समक्ष

सुखचैन सिंह एंड कंपनी और अन्य,-याचिकाकर्ता

बनाम

भारतीय खाद्य निगम और अन्य,-प्रतिवादी।

1981 की सिविल रिट याचिका संख्या 4991।

2 मार्च 1984.

कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम (1952 का XIX)-धारा 7-ए-भारत का संविधान 1950- अनुच्छेद 14-धारा 7-ए के तहत देय राशि का निर्धारण करने वाले आयुक्त के आदेश को सिविल न्यायालय में अंतिम और गैर-न्याय योग्य बना दिया गया- ऐसे आदेश के विरुद्ध कोई अपील प्रदान नहीं की गई - धारा 7-ए के प्रावधान - क्या अनुच्छेद 14 अधिकारातीत है।

ये निर्धारित किया गया कि जैसा कि, अधिनियम की धारा 7 ए के विश्लेषण से स्पष्ट है, प्राधिकरण को अधिनियम के प्रावधानों के तहत किसी भी नियोक्ता से 'देय राशि' निर्धारित करने की आवश्यकता होती है और उस उद्देश्य के लिए, उसे जांच करनी होती है और नियोक्ता को सुनवाई करनी होती है। नियोक्ता के हितों की रक्षा के लिए, प्राधिकरण को किसी भी साक्ष्य को बुलाने, किसी भी रिकॉर्ड की जांच करने, किसी भी हलफनामे को स्वीकार करने या गवाह की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करने की शक्ति के साथ निवेश किया जाता है, जैसा कि वह सही और उचित समझता है। इसके अलावा, नियोक्ता को अपने मामले का प्रतिनिधित्व करने का उचित अवसर दिया जाना तय है। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 7क के उपबंध अधिनियम, योजना अथवा परिवार पेंशन योजना अथवा बीमा योजना के किन्हीं उपबंधों के अंतर्गत नियोक्ता से देय राशि का निर्धारण करने के प्रयोजन से जांच करने के लिए संपूर्ण प्रक्रिया निर्धारित करते हैं।

7. इसके अलावा, प्राधिकरण को केवल कर्मचारी को अधिनियम के प्रावधानों के तहत देय राशि का निर्धारण करने की आवश्यकता है, और उस उद्देश्य के लिए अधिनियम और इसके विभिन्न प्रावधानों में पर्याप्त दिशानिर्देश प्रदान किए गए हैं। यद्यपि अधिनियम में 'देय राशि' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, सामान्य अर्थों में, कानून में वसूली योग्य राशि का अर्थ होगा। दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखते हुए अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकरण को केवल उस राशि की अंकगणितीय गणना करनी होती है जिसे वसूल करने का कर्मचारी हकदार है और जिसका भुगतान नियोक्ता द्वारा कानूनी रूप से नहीं किया गया है। जैसा कि निर्णय के पहले भाग में कहा गया है, यह अधिनियम औद्योगिक कर्मचारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा अधिनियमन का एक भाग है। अधिनियम में मौजूद कमी को दूर करने के लिए धारा 7ए पेश की जानी थी क्योंकि यह कर्मचारी को अधिनियम के तहत निर्धारित राशि प्राप्त करने के लिए कोई मंच प्रदान नहीं करता था। इसके अलावा, इस प्रावधान को पेश करने के उद्देश्य की निराशा से बचने के लिए सिविल कोर्ट में इस तरह के सारांश आदेश की न्यायसंगतता को दूर करना पड़ा। यदि अधिनियम की धारा 7क के अंतर्गत किसी आदेश को सिविल न्यायालय में चुनौती दिए जाने की अनुमति दी जाती है तो गरीब कर्मचारी लम्बे मुकदमेबाजी में घसीटे जाएंगे और अंतत वे पाएंगे कि उन्हें सिविल मुकदमों में उस राशि की तुलना में अधिक धन खर्च करने के लिए बाध्य किया गया है जिसके वे हकदार पाए गए हैं। एक नियोक्ता हमेशा इस तरह के मुकदमेबाजी में शामिल होने की स्थिति में होगा। ऐसी स्थिति और कर्मचारियों को परेशान करने से बचने के लिए विधायिका ने अपने विवेक से सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को छीन लिया। इस पर कभी बहस नहीं की गई और यह तर्क उचित नहीं दिया जा सकता कि किसी दी गई स्थिति में, विधायिका सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को नहीं छीन सकती है और न ही यह सुझाव दिया गया था कि एक प्रावधान को केवल इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को छीन लिया गया था। अधिनियम की धारा 7क के अंतर्गत निर्धारित संपूर्ण प्रक्रिया के मद्देनजर, यह नहीं कहा जा सकता है कि

अधिनियम की धारा 7क के उपबंधों का साधारण न्यायालय में न्यायोचित न होना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के उपबंधों का उल्लंघन है।

9. इस आधार पर आते हुए कि प्राधिकरण के आदेश के खिलाफ कोई अपील प्रदान नहीं की गई है, मैं फिर से इस हमले में कोई सार नहीं पाता हूं। केवल इस तथ्य से कि अपील का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है, कानून के प्रावधान को मनमाना नहीं ठहराया जा सकता है। अपील का अधिकार क़ानून का निर्माण है और कानून के तहत ऐसे अधिकार को अस्वीकार करने या छीनने को किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं माना जा सकता है। इसलिए, यह निर्धारित किया जाता है कि अधिनियम की धारा 7-ए के प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 के अधिकारातीत नहीं हैं।

(पैरा 6, 7, 8, 9 और 10)

• भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिका जिसमें प्रार्थना की गई है कि:-

(ए) भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952 की धारा 7-ए को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए संविधान के दायरे से बाहर माना जाएगा और तदनुसार उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाएगा।

(बी) नोटिस अनुबंध पी. 1 और आदेश अनुबंध पी. 3 को पूरी तरह से अवैध और अधिनियम के प्रावधानों के खिलाफ होने के कारण सर्टिओरीरी की प्रकृति में रिट जारी करके कृपया खारिज कर दिया जाए;

(सी) वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और आवश्यक समझा जाने वाला कोई अन्य रिट आदेश या निर्देश कृपया जारी किया जा सकता है;

(डी) अनुलग्नक पी 1 से पी.3 की प्रमाणित प्रतियों को दाखिल करने से छूट दी जा सकती है क्योंकि मामला अत्यावश्यक है और उत्तरदायित्व लगाने वाला आदेश किसी भी समय प्रतिवादी-क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त द्वारा पारित किए जाने की संभावना है;

(ए)) कृपया अग्रिम नोटिस जारी करने से छूट दी जाए क्योंकि मामला अत्यावश्यक है और प्रतिवादी-आर.पी.एफ. के पास कोई समय नहीं बचा है। कमिश्नर ने देनदारी आदि का आकलन करने की कार्यवाही के लिए 4 नवंबर, 1981 की तारीख तय की है जिसके परिणामस्वरूप जुर्माना लगने की भी संभावना है;

(एफ) रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान कमिश्नर आर.पी.एफ. के समक्ष आगे की कार्यवाही के लिए आक्षेपित आदेश के संचालन पर रोक लगाई जाए

(छ) लागत के साथ रिट की अनुमति दी जाए।

याचिकाकर्ता के वकील - वी.के. बाली।

सी. डी. दे वान, वरिष्ठ अधिवक्ता, एस. के. शर्मा, अधिवक्ता, जी. सी. गर्ग, अधिवक्ता संख्या 1 और 2 के साथ।

निर्णय

माननीय कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति प्रेम चंद जैन

1. बेंच द्वारा निर्धारित किए जाने वाले संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या 'कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952' (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 7A भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के *अधिकारातीत* है ? प्रश्न विशुद्ध रूप से कानूनी होने के कारण, याचिका में बताए गए तथ्यों का संदर्भ पूरी तरह से अनावश्यक है। याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा आग्रह किए गए बिंदुओं को इस प्रकार तैयार किया जा सकता है: -

(i) आयुक्त द्वारा पारित आदेश सिविल न्यायालय में अंतिम और गैर-वादयोग्य है;

(ii) आयुक्त के निर्णय से अपील का कोई अधिकार नहीं है;

2. यह पूर्वोक्त आधारों के आधार पर है कि विद्वान वकील ने तर्क दिया था कि अधिनियम की धारा 7 ए के प्रावधान अनुचित और बुरे हैं।

3. पूर्वोक्त बिंदुओं से निपटने से पहले, अधिनियम की योजना को नोटिस करना और समझना उचित होगा। यह अधिनियम सामाजिक सुरक्षा अधिनियमन का एक भाग है। अधिनियम के लागू होने से पहले औद्योगिक कर्मचारियों को भविष्य निधि के लाभ के लिए कोई अनिवार्य सांविधिक प्रावधान नहीं था। यह अधिनियमन एक कार्यकर्ता को अपनी कमाई क्षमता के अनुरूप कुछ धन प्राप्त करने में सक्षम बनाता है जिस पर वह सेवानिवृत्ति के समय वापस आ सकता है। यह कार्यकर्ता की शीघ्र मृत्यु के मामले में आश्रितों को राहत देता है। केंद्र सरकार अधिनियम के तहत भविष्य निधि और परिवार पेंशन और जीवन बीमा लाभों की स्थापना के लिए कर्मचारी भविष्य निधि योजना और परिवार पेंशन योजना नामक योजनाओं को तैयार करने के लिए अधिकृत है। इस अधिनियम और इस प्रकार बनाई गई स्कीमों में उस एकमात्र उद्देश्य, जिसके लिए यह अधिनियम बनाया गया है, को प्राप्त करने के लिए सामाजिक सुरक्षा के व्यापक उपायों के साथ-साथ प्रशासनिक तंत्र का प्रावधान है।

4. अधिनियम की धारा 7 ए पर आते हुए , यह ध्यान दिया जाएगा कि इस धारा को 1963 के अधिनियम संख्या 28 में संशोधन के माध्यम से अधिनियम में जोड़ा गया था। अधिनियम की धारा 7क के पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती प्रावधानों की जांच से पता चलता है कि अधिनियम की धारा 6 निधि में नियोक्ता के अंशदान की मात्रा और योजनाओं में प्रदान किए जाने वाले अन्य मामलों से संबंधित है। अधिनियम की धारा 6A कर्मचारी की पारिवारिक पेंशन योजना से संबंधित है जबकि धारा 6B केंद्र सरकार द्वारा पारिवारिक पेंशन योजना के लिए किए जाने वाले विशेष अनुदान से संबंधित है। धारा 6ग में कर्मचारी जमा संबद्ध बीमा योजना का प्रावधान है और धारा 7 में योजना के संशोधन की शक्ति केन्द्र सरकार को निहित है। इसके अतिरिक्त, धारा 8 नियोक्ताओं से देय धन की वसूली की प्रक्रिया और तरीका निर्धारित करती है, जबकि धारा 8क नियोक्ताओं और ठेकेदारों द्वारा धन की वसूली के लिए सुरक्षा उपायों का प्रावधान करती है। जाहिर है, नियोक्ता से देय धन के निर्धारण का मामला गायब

था, जिसके कारण अधिनियम की धारा 7 ए को शामिल करना आवश्यक हो गया । इस स्तर पर, संदर्भ की सुविधा के लिए धारा 7 ए के प्रावधानों पर ध्यान दिया जा सकता है: -

"7-ए. नियोक्ताओं से देय धन का निर्धारण-

(1) केन्द्रीय भविष्य निधि आयुक्त, कोई उप भविष्य निधि आयुक्त या कोई प्रादेशिक भविष्य निधि आयुक्त, आदेश द्वारा, इस अधिनियम, स्कीम या कुटुम्ब पेंशन योजना, या बीमा योजना के किसी उपबंध के अधीन किसी नियोक्ता से देय रकम यथास्थिति, अवधारित कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिये ऐसी जांच कर सकेगा जो वह आवश्यक समझे।

(2) उपधारा (1) के अधीन जांच करने वाले अधिकारी को, ऐसी जांच के प्रयोजन के लिये, वही शक्तियाँ होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी न्यायालय में निम्नलिखित विषयों की संबद्धता के लिये किसी वाद का विचारण करने के लिये निहित हैं, अर्थात:-

(क) किसी व्यक्ति की उपस्थिति को प्रवृत्त करना या शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(बी) दस्तावेजों की खोज और उत्पादन की आवश्यकता है;

(ग) शपथ पत्र पर साक्ष्य प्राप्त करना;

(घ) साक्षियों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना;

और ऐसी किसी भी जांच को धारा 193 और 228 के अर्थ के भीतर और भारतीय दंड संहिता की धारा 196 के प्रयोजन के लिए न्यायिक कार्यवाही माना जाएगा।

(3) किसी भी नियोक्ता से देय राशि का निर्धारण करने का कोई आदेश उप-धारा (1) के तहत नहीं किया जाएगा जब तक कि नियोक्ता को अपने मामले का प्रतिनिधित्व करने का उचित अवसर नहीं दिया जाता है।

(4) इस धारा के अधीन किया गया आदेश अंतिम होगा और उस पर किसी न्यायालय में प्रश्नगत प्रश्न नहीं किया जाएगा।

5. उपर्युक्त प्रावधानों के छोटे से विश्लेषण से संकेत मिलता है कि केंद्रीय भविष्य निधि आयुक्त, या उप भविष्य निधि आयुक्त, या क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त को अधिनियम, योजना या परिवार पेंशन योजना या बीमा योजना के किसी भी प्रावधान के तहत नियोक्ता से देय राशि निर्धारित करने के लिए अधिकृत किया गया है, और उस प्रयोजन के लिए, प्राधिकरण ऐसी जांच कर सकता है जैसा कि वह आवश्यक समझे। उपधारा (2) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि उपधारा (1) के अधीन जांच करने वाले अधिकारी को वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो उसमें प्रगणित विषयों के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन न्यायालय में निहित हैं। उप-धारा (3) प्रदान करता है कि देय राशि का निर्धारण करने से पहले नियोक्ता को उसके मामले का प्रतिनिधित्व करने का एक उचित अवसर दिया जाएगा। उप-धारा (4) के तहत यह प्रदान किया गया है कि प्राधिकरण द्वारा किया गया आदेश अंतिम होगा और किसी भी न्यायालय में सवाल नहीं उठाया जाएगा।

6. अब मैं निर्णय के पहले भाग में गुण-दोष के आधार पर उल्लिखित बिन्दुओं पर चर्चा करूंगा। तर्क विकसित करते समय, याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा जो तर्क दिया गया था, वह यह था कि सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को छीनकर और आयुक्त के आदेश के खिलाफ अपील का उपाय प्रदान नहीं करके, अधिनियम के तहत प्राधिकरण को एक मनमाना, बेलगाम और अनिर्देशित शक्ति दी गई है कि वह मामले को किसी भी तरीके से तय कर सके जिसके परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा 7 ए यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के *अधिकारातीत* है । हालांकि, यह तर्क काफी आकर्षक प्रतीत होता है, फिर भी सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक घोषणाओं के आलोक में इसकी थोड़ी सी जांच इसके खोखलेपन को प्रकट करती है। जैसा कि, अधिनियम की धारा 7 ए के विश्लेषण से स्पष्ट है, प्राधिकरण को अधिनियम के प्रावधानों के तहत किसी भी नियोक्ता से 'देय राशि' निर्धारित करने की आवश्यकता होती है और उस उद्देश्य के लिए, उसे जांच करनी होती है और नियोक्ता को सुनवाई करनी होती है। नियोक्ता के हितों की रक्षा के लिए, प्राधिकरण को किसी भी साक्ष्य को बुलाने, किसी भी

रिकॉर्ड की जांच करने, किसी भी हलफनामे को स्वीकार करने या गवाह की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करने की शक्ति के साथ निवेश किया जाता है, जैसा कि वह सही और उचित समझता है। इसके अलावा, नियोक्ता को अपने मामले का प्रतिनिधित्व करने का उचित अवसर दिया जाना तय है। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 7क के उपबंध अधिनियम, योजना अथवा परिवार पेंशन योजना अथवा बीमा योजना के किन्हीं उपबंधों के अंतर्गत नियोक्ता से देय राशि का निर्धारण करने के प्रयोजन से जांच करने के लिए संपूर्ण प्रक्रिया निर्धारित करते हैं।

7. इसके अलावा, प्राधिकरण को केवल कर्मचारी को अधिनियम के प्रावधानों के तहत देय राशि का निर्धारण करने की आवश्यकता है, और उस उद्देश्य के लिए अधिनियम और इसके विभिन्न प्रावधानों में पर्याप्त दिशानिर्देश प्रदान किए गए हैं। यद्यपि अधिनियम में 'देय राशि' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, सामान्य अर्थों में, कानून में वसूली योग्य राशि का अर्थ होगा। दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखते हुए अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकरण को केवल उस राशि की अंकगणितीय गणना करनी होती है जिसे वसूल करने का कर्मचारी हकदार है और जिसका भुगतान नियोक्ता द्वारा कानूनी रूप से नहीं किया गया है। जैसा कि निर्णय के पहले भाग में कहा गया है, यह अधिनियम औद्योगिक कर्मचारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा अधिनियमन का एक भाग है। अधिनियम में मौजूद कमी को दूर करने के लिए धारा 7ए पेश की जानी थी क्योंकि यह कर्मचारी को अधिनियम के तहत निर्धारित राशि प्राप्त करने के लिए कोई मंच प्रदान नहीं करता था।

8. इसके अलावा, इस प्रावधान को पेश करने के उद्देश्य की निराशा से बचने के लिए सिविल कोर्ट में इस तरह के सारांश आदेश की न्यायसंगतता को दूर करना पड़ा। यदि अधिनियम की धारा 7क के अंतर्गत किसी आदेश को सिविल न्यायालय में चुनौती दिए जाने की अनुमति दी जाती है तो गरीब कर्मचारी लम्बे मुकदमेबाजी में घसीटे जाएंगे और अंतत वे पाएंगे कि उन्हें सिविल मुकदमों में उस राशि की तुलना में अधिक धन खर्च करने के लिए बाध्य किया गया है जिसके वे हकदार पाए गए हैं। एक नियोक्ता हमेशा इस तरह के मुकदमेबाजी में

शामिल होने की स्थिति में होगा। ऐसी स्थिति और कर्मचारियों को परेशान करने से बचने के लिए विधायिका ने अपने विवेक से सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को छीन लिया। इस पर कभी बहस नहीं की गई और यह तर्क उचित नहीं दिया जा सकता कि किसी दी गई स्थिति में, विधायिका सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को नहीं छीन सकती है और न ही यह सुझाव दिया गया था कि एक प्रावधान को केवल इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को छीन लिया गया था। अधिनियम की धारा 7क के अंतर्गत निर्धारित संपूर्ण प्रक्रिया के मद्देनजर, यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिनियम की धारा 7क के उपबंधों का साधारण न्यायालय में न्यायोचित न होना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के उपबंधों का उल्लंघन है।

9. इस आधार पर आते हुए कि प्राधिकरण के आदेश के खिलाफ कोई अपील प्रदान नहीं की गई है, मैं फिर से इस हमले में कोई सार नहीं पाता हूं। केवल इस तथ्य से कि अपील का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है, कानून के प्रावधान को मनमाना नहीं ठहराया जा सकता है। ***ऑर्गनो केमिकल इंडस्ट्रीज और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1979 सुप्रीम कोर्ट 1803 में,*** सुप्रीम कोर्ट ने अधिनियम की धारा 14 बी की *शक्तियों* को बरकरार रखा जिसके तहत प्राधिकरण को नियोक्ता से नुकसान की राशि वसूलने की शक्ति दी गई है। अधिनियम की धारा 14 बी के प्रावधानों को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि इस धारा में अपीलीय समीक्षा के दिशानिर्देशों का अभाव था। उठाए गए तर्क को खारिज करते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार कहा: -

> "9. न ही दिशानिर्देशों या अपीलीय समीक्षा की अनुपस्थिति की दलील धारा 14 बी की वैधता को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। यह तर्क सुनना आकर्षक है कि एक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश, जो अपील या पुनरीक्षण की अनुपस्थिति में अचूक रूप से अंतिम हो जाता है, मनमाना और बुरा होने के लिए उपयुक्त है। एक अपील एक वांछनीय सुधारात्मक है, लेकिन एक अनिवार्य अनिवार्यता नहीं है, और जबकि इसकी उपस्थिति

स्वच्छंद आदेशों पर एक अतिरिक्त जांच है, इसकी अनुपस्थिति मनमानी क्षमता का एक निश्चित सूचकांक नहीं है। यह विषय-वस्तु की प्रकृति, अन्य उपलब्ध सुधार, गलत आदेशों से बहने वाले संभावित नुकसान और अन्य कारकों के धन पर निर्भर करता है।

10. यदि एक एकल अपील के बिना मौत की सजा को निर्णायक बनने की अनुमति दी जाती है, तो अनुच्छेद 14 और 21 इस तरह के प्रावधान को खतरे में डाल सकते हैं, लेकिन अगर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट द्वारा सारांश परीक्षण में मामूली अपराध के लिए लगाए गए 5 रुपये का जुर्माना विकृत या पेटेंट अवैधता की स्थिति में संवैधानिक उपचार के अधीन अंतिम रूप से दिया जाता है, हम अभी भी एक आसान संवैधानिक विवेक के साथ उस प्रावधान को बनाए रख सकते हैं। वर्तमान मामले में, प्रभावित पक्ष को सुनवाई दी जाती है। हर्जाना देने के आदेश में कारणों को दर्ज करना होगा। रिट क्षेत्राधिकार स्पष्ट त्रुटियों की समीक्षा करने के लिए तैयार है। अधिकतम नुकसान क़ानून द्वारा सीमित आर्थिक दायित्व है। एक उच्च अधिकारी सुनता है और निर्णय लेता है। ऐसी परिस्थितियों में तथ्यात्मक स्थिति और कानूनी परिवेश की आवश्यकताएं ऐसीहैं कि अपीलीय समीक्षा की अनुपस्थिति किसी भी तरह से प्रावधान के न्याय और तर्कसंगतता के खिलाफ नहीं है। इस स्कोर की मनमानी का तर्क अस्थिर है। धारा खराब नहीं है। हो सकता है, धारा के तहत कार्रवाई को रिट क्षेत्राधिकार में चुनौती दी जा सकती है, बशर्ते कि ऐसी कमजोरियां जो इस तरह के अधिकार क्षेत्र को आकर्षित करती हैं, आदेश को खराब करती हैं।

मेरे विचार में, सुप्रीम कोर्ट की उपरोक्त टिप्पणियां याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्कों का पूर्ण उत्तर हैं। इसके अलावा, पटना उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने ***मेसर्स इंटर स्टेट ट्रांसपोर्ट एजेंसी, सीतामढ़ी बनाम क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त, पटना, 1983 लैब आईसी 940*** में भी अधिनियम की धारा 7 ए की *शक्तियों* को बरकरार रखा है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने हमारा ध्यान ***मैसर्स वायर नेटिंग स्टोर्स, दिल्ली और अन्य***

बनाम भारत संघ क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त। नई दिल्ली और अन्य, 1981 लैब आईसी 1015। यह सही है कि निर्णय याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील के तर्क का समर्थन करता है। लेकिन, सम्मान के साथ, मैं उस दृष्टिकोण का समर्थन करने में असमर्थ हूं, विशेष रूप से, ऑर्गेनो केमिकल इंडस्ट्रीज के मामले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मद्देनजर। इसके अलावा, मुझे लगता है कि अगर ऑर्गनो केमिकल इंडस्ट्रीज के मामले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट का फैसला विद्वान न्यायाधीशों के ध्यान में लाया गया होता, तो उस मामले का भाग्य भी अलग होता।

10. इस प्रकार, पूर्वोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, मैं मानता हूं कि अधिनियम की धारा 7क के प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 के *अधिकारातीत* नहीं हैं। अब यह मामला गुणावगुण के आधार पर निपटान के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश के पास वापस जाएगा।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

आदित्य जैन

सिविल जज (जूनियर डिविजन) व प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

पानीपत, हरियाणा।